ग्रन्थ-संख्या—४२

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस,
प्रयाग

पंचम संस्करण
सं० २००४
मूल्य १)

मुद्रक—
महादेव जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

निवेदन

जिस शैली की कविता को हिन्दी-साहित्य के आज दिन 'छायावाद' का नाम मिल रहा है, उसका प्रारम्भ प्रस्तुत संग्रह द्वारा ही हुआ था। इस दृष्टि से यह संग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हमारा विश्वास है, आधुनिक कविता-शैली का प्रारम्भिक परिचय प्राप्त करने में पाठकों को इस संग्रह से सहायता मिलेगी।

—प्रकाशक

क्रम

परिचय

१

उषा का प्राची में आभास।
सरोरुह का, सर बीच विकाश॥
कौन परिचय था ? क्या सम्बन्ध ?
"गगन मण्डल में अरुण विलास॥"

२

रहे रजनी में कहाँ मलिन्द ?
सरोवर बीच खिला अरविन्द॥
कौन परिचय था ? क्या सम्बन्ध ?
"मधुर मधुमय मोहन मकरन्द॥"

३

प्रफुल्लित मानस बीच सरोज।
मलय से अनिल चला कर खोज॥
कौन परिचय था ? क्या सम्बन्ध ?
"वही परिमल जो मिलता रोज॥"

४

राग से अरुण, घुला मकरन्द।
मिला परिमल से जो सानन्द॥
वही परिचय था, वह सम्बन्ध।
"प्रेम का, मेरा तेरा छन्द॥"

झरना

झरना

मधुर है स्रोत मधुर है लहरी ।
न है उत्पात, छटा है छहरी ॥
मनोहर झरना,
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना ।
बात कुछ छिपी हुई है गहरी ।
मधुर है स्रोत मधुर है लहरी ।

२

कल्पनातीत काल की घटना ।
हृदय को लगी अचानक रटना ॥
देखकर झरना,
प्रथम वर्षा से इसका भरना ।
स्मरण हो रहा शैल का कटना ।
कल्पनातीत काल की घटना ॥

३

कर गई प्लावित तन मन सारा।
एक दिन तव अपाङ्ग की धारा॥
हृदय से झरना—
बह चला, जैसे दृगजल ढरना।
प्रणय वन्या ने किया पसारा।
कर गई प्लावित तन मन सारा॥

४

प्रेम की पवित्र परछाईं में।
लालसा हरित विटपि झाँईं में॥
बह चला झरना,
तापमय जीवन शीतल करना।
सत्य यह तेरी सुघराई में।
प्रेम की पवित्र परछाँईं में॥

अव्यवस्थित—

विश्व के नीरव निर्जन में।
जब करता हूँ बेकल, चंचल,
मानस को कुछ शान्त,
होती है कुछ ऐसी हलचल,
हो जाता है भ्रान्त;
भटकता है भ्रम के वन में,
विश्व के कुसुमित कानन में।

जब लता हूँ अभारी हो,
वल्लरियों से दान,
कलियों की माला बन जाती,
अलियों का हो गान;

विकलता बढ़ती हिमकन में,
विश्वपति, तेरे आँगन में।

जब करता हूँ कभी प्रार्थना,
कर संकलित विचार,
तभी कामना के नूपुर की,
हो जाती झनकार;

चमत्कृत होता हूँ मन में,
विश्व के नीरव निर्जन में।

प्रथम प्रभात

मनोवृत्तियाँ खग-कुल-सी थीं सो रहीं
अन्तःकरण नवीन मनोहर नीड़ में।
नील-गगन सा शान्त हृदय था हो रहा
वाह्य आन्तरिक प्रकृति सभी सोती रहीं॥

स्पन्दन-हीन नवीन मुकुल मन तुष्ट था,
अपने ही प्रच्छन्न विमल मकरन्द से।
अहा, अचानक किस मलयानिल ने तभी,
फूलों के सौरभ से पूरा लदा हुआ।

आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया मुझे,
खुली आँख आनन्द दृश्य दिखला दिया।
मनोवेग मधुकर-सा फिर तो गूँज के,
मधुर-मधुर स्वर्गीय गान गाने लगा॥

वर्षा होने लगी कुसुम मकरन्द की।
प्राण पपीहा बोल उठा आनन्द में।
कैसी छवि ने बाल-अरुण-सी प्रकट हो,
शून्य हृदय को नवल राग रंजित किया।

सद्यः स्नात हुआ मैं प्रेम सुतीर्थ में—
मन पवित्र उत्साह-पूर्ण सा हो गया,
विश्व, विमल आनन्द-भवन-सा हो गया,
मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था॥

खोलो द्वार

शिशिर-कणों से लदी हुई, कमलों के भीगे हैं सब तार।
चलता है पश्चिम का मारुत, लेकर शीतलता का भार॥
भींग रहा है रजनी का वह, सुन्दर कोमल कबरी-भार।
अरुण किरण सम कर से छू लो, खोलो प्रियतम! खोलो द्वार॥
धूल लगी है, पद काँटों से बिंधा हुआ, है दुःख अपार।
किसी तरह से भूला-भटका आ पहुँचा हूँ तेरे द्वार॥
डरो न इतना, धूलिधूसरित होगा नहीं तुम्हारा द्वार।
धो डाले हैं इनको प्रियवर, इन आँखों से आँसू ढार॥
मेरे धूलि लगे पैरों से, इतना करो न घृणा प्रकाश।
मेरे ऐसे धूल कणों से कब, तेरे पद को अवकाश॥
पैरों ही से लिपटा-लिपटा कर लूँगा निज पद निर्धार।
अब तो छोड़ नहीं सकता हूँ, पाकर प्राप्य तुम्हारा द्वार॥
सुप्रभात मेरा भी होवे, इस रजनी का दुःख अपार—
मिट जावे जो तुमको देखूँ खोलो, प्रियतम! खोलो द्वार॥

रूप

ये वङ्किम भ्रू, युगल कुटिल कुन्तल घने,
नील नलिन से नेत्र—चपल मद से भरे,
अरुण राग रञ्जित कोमल हिम खण्ड से—
सुन्दर गोल कपोल, सुडर नासा बनी।
धवल स्मित जैसे शारद घन बीच में—
(जो कि कौमुदी से रञ्जित है हो रहा)
चपला-सी है ग्रीवा हँसी से बढ़ी।
रूप जलधि में लोल लहरियाँ उठ रहीं।
मुक्तागण हैं लिपटे कोमल कम्बु में।
चञ्चल चितवन चमकीली है कर रही—
सृष्टि मात्र को, मानो पूरी स्वच्छता—
चीनांशुक बनकर लिपटी है अङ्ग में।
अस्तव्यस्त है वह भी ढँकने कौन सा—
अङ्ग, न जिसमें कोई दृष्टि लगे उसे।
मिले हुए ये सुमन सुरभि मकरन्द से—
और नलिनियों के करते हैं व्यजन-से।

दो बूँदे

शरद का सुन्दर नीलाकाश,
निशा निखरी, था निर्मल हास।
बह रही छाया पथ में स्वच्छ
सुधा सरिता लेती उच्छ्वास॥
पुलक कर लगी देखने धरा,
प्रकृति भी सकी न आँखें मूँद।
सुशीतलकारी शशि आया,
सुधा की मानों बड़ी सी बूँद॥

× × × ×

हरित किसलयमय कोमल वृक्ष,
झुक रहा जिसका पाक भार।
उसी पर रे मतवाले मधुप!
बैठकर करता तू गुञ्जार॥
न आशा कर तू अरे! अधीर,
कुसुम रज—रस ले लूँगा गूँद।
फूल है नन्हा-सा-नादान,
भरा मकरन्द एक ही बूँद॥

—

पावस-प्रभात

नव तमाल श्यामल नीरद माला भली
श्रावण की राका रजनी में घिर चुकी।
अब उसके कुछ बचे अंश आकाश में
भूले भटके पथिक सदृश हैं घूमते॥

अर्ध रात्रि में खिली हुई थी मालती,
उस पर से जो विछल पड़ा था, वह चपल—
मलयानिल भी अस्तव्यस्त है घूमता
उसे स्थान ही कहीं ठहरने को नहीं।
मुक्त व्योम में उड़ते उड़ते डाल से।
कातर अलस पपीहा की वह ध्वनि कभी—
निकल निकल कर भूल या कि अनजान में,
लगती है खोजने किसी को प्रेम से।
क्लान्त तारकागण की मद्यप-मण्डली,
नेत्र निमीलन करती है फिर खोलती।
रिक्त चषक-सा चन्द्र लुढ़क कर है गिरा,
रजनी के आपानक का अब अंत है॥
रजनी के रञ्जक उपकरण बिखर गये,
घूँघट खोल उषा ने झाँका और फिर—
अरुण अपांगों से देखा, कुछ हँस पड़ी,
लगी टहलने प्राची प्राङ्गण में तभी॥

वसन्त की प्रतीक्षा

परिश्रम करता हूँ अविराम, बनाता हूँ क्यारी औ कुंज।
सींचता दृग जल से सानन्द, खिलेगा कभी मल्लिका-पुंज॥
न काँटों की है कुछ परवाह, सजा रखता हूँ इन्हें सयत्न।
कभी तो होगा इनमें फूल, सफल होगा यह कभी प्रयत्न॥
कभी मधु राका देख इसे, करेगी इठलाती मधुहास।
अचानक फूल खिल उठेंगे, कुंज होगा मलयज-आवास॥
नई कोंपल में से कोकिल, कभी किलकारेगा सानन्द।
एक क्षण बैठ हमारे पास, पिला दोगे मदिरा मकरन्द॥
मूक हो मतवाली ममता, खिलें फूलों से विश्व अनन्त॥
चेतना बने अधीर मिलिन्द, आह, वह आवे विमल वसन्त॥

वसन्त

तू आता है फिर जाता है।
जीवन में पुलकित प्रणय सदृस,
यौवन की पहली कान्ति अकुश,
जैसी हो, वह तू पाता है, हे वसन्त क्यों तू आता है?
पिक अपनी कूक सुनाता है,
तू आता है फिर जाता है।
बस, खुले हृदय से करुण कथा,
बीती बातें कुछ मर्म व्यथा,
वह डाल-डाल पर जाता है, फिर ताल-ताल पर गाता है।
मलयज मन्थर गति आता है,
तू आता है फिर जाता है।
जीवन की सुख दुख आशा सब,
पतझड़ हो पूर्ण हुई है अब,
विकसित रसाल मुसक्याता है, कर-किसलय हिला बुलाता है।
हे वसन्त क्यों तू आता है?
तू आता है फिर जाता है।

किरण

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग।

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली सी फिर भी मौन,—
किसी अज्ञात विश्व की विकल-
वेदना-दूती सी तुम कौन ?

अरुण शिशु के मुख पर सविलास,
सुनहली लट घुँघराली कान्त,
नाचती हो जैसे तुम कौन ?—
उषा के अंचल में अश्रान्त।

भला उस भोले मुख को छोड़,
और चूमोगी किसका भाल,
मनोहर यह कैसा है नृत्य,
कौन देता है सम पर ताल ?

कोकनद मधु धारा सी तरल,
विश्व में वहती हो किस ओर ?
प्रकृति को देती परमानन्द,
उठाकर सुन्दर सरस हिलोर।
स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन,
मिलाती हो उससे भूलोक ?
जोड़ती हो कैसा सम्बन्ध,
बना दोगी क्या विरज विशोक !

सुदिन मणि-वलय विभूषित उषा—
सुन्दरी के कर का संकेत—
कर रही हो तुम किसको मधुर,
किसे दिखलाती प्रेम निकेत।
चपल ! ठहरो कुछ लो विश्राम,
चल चुकी हो पथ शून्य अनन्त,
सुमन मन्दिर के खोलो द्वार,
जगे फिर सोया वहाँ वसन्त।

विषाद

कौन, प्रकृति के करुण काव्य सा,
वृक्ष पत्र की मधु छाया में।
लिखा हुआ सा अंचल पड़ा है,
अमृत सदृश नश्वर काया में॥
अखिल विश्व के कोलाहल से,
दूर सुदूर निभृत निर्जन में।
गोधूली के मलिनाञ्चल में,
कौन जङ्गली बैठा बन में॥
शिथिल पड़ी प्रत्यञ्चा किसकी,
धनुष भग्न सब छिन्न जाल है।
वंशी नीरव पड़ी धूल में,
वीणा का भी बुरा हाल है॥
किसके तममय अन्तरतम में,
झिल्ली की झनकार हो रही॥
स्मृति सन्नाटे से भर जाती,
चपला ले विश्राम सो रही॥
किसके अन्तःकरण अजिर में,
अखिल व्योम का लेकर मोती।

आँसू का बादल बन जाता,
फिर तुषार की वर्षा होती ?
विषय शून्य किसकी चितवन है,
ठहरी पलक अलक में आलस !
किसका यह सूखा सुहाग है,
छिना हुआ किसका सारा रस ?
निर्झर कौन बहुत बल खाकर,
बिलखाता ठुकराता फिरता ?
खोज रहा है स्थान धरा में,
अपने ही चरणों में गिरता ॥
किसी हृदय का यह विषाद है,
छेड़ो मत यह सुख का कण है।
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ,
करुणा का विश्रान्त चरण है ॥

बालू की बेला

आँख बचाकर न किरकिरा करदो इस जीवन का मेला।
कहाँ मिलोगे ? किसी विजन में ?—न हो भीड़ का जब रेला॥

दूर ! कहाँ तक दूर ? थका भरपूर चूर सब अंग हुआ।
दुर्गम पथ में विरथ दौड़कर खेल न था मैंने खेला॥

कहते हो 'कुछ दुःख नहीं' हाँ ठीक, हँसी से पूछो तुम।
प्रश्न करो टेढ़ी चितवन से, किस-किसको किसने झेला ?

आने दो मीठी मीड़ों से नूपर की झनकार, रहो।
गलबाहीं दे हाथ बढ़ाओ, कह दो प्याला भर दे, ला !

निठुर इन्हीं चरणों में मैं रत्नाकर हृदय उलीच रहा।
पुलकित, प्लावित रहो, बनो मत सूखी बालू की बेला॥

———

चिह्न

इस अनन्त पथ के कितने ही, छोड़ छोड़ विश्राम-स्थान ;
आये थे हम विकल देखने, नव वसन्त का सुन्दर मान।
मानवता के निर्जन वन में जड़ थी प्रकृति शान्त था व्योम ;
तपती थी मध्याह्न किरण-सी प्राणों की गति लोम विलोम।
आशा थी परिहास कर रही स्मृति का होता था उपहास ;
दूर क्षितिज में जाकर सोता था जीवन का नव उल्लास।

द्रुतगति से था दौड़ लगाता चक्कर खाता पवन हताश ;
विह्वल सी थी दीन वेदना मुँह खोले मलीन अवकाश।
हृदय एक निःश्वास फेंककर खोज रहा था प्रेम निकेत ;
जीर्ण काण्ड वृक्षों के हँसकर रूखा-सा करते संकेत।
बिखर चुकी थी अम्बरतल में सौरभ की शुचितम सुख धूल ;
पृथ्वी पर थे विकल लोटते शुष्क पत्र मुरझाये फूल।
गोधूली की धूसर छवि ने चित्रपटी ली सकल समेट ;
निर्मल चिति का दीप जलाकर छोड़ चला यह अपनी भेंट।
मधुर आँच से गला बहावेगा शैलों से निर्झर लोक ;
शान्ति सुरसरी की शीतल जल लहरी को देता आलोक।
नव यौवन की प्रेम कल्पना और विरह का तीव्र विनोद ;
स्वर्ण रत्न की तरल कान्ति, शिशु का स्मित या माता की गोद।
इसके तल के तम अञ्चल में इनकी लहरों का लघु भान ;
मधुर हँसी से अस्तव्यस्त हो, हो जायेगी फिर अवसान।

दीप

धूसर सन्ध्या चली आ रही थी अधिकार जमाने को,
अन्धकार अवसाद कालिमा लिये रहा बरसाने को।
गिरि संकट में जीवन-सोता मन मारे चुप बहता था,
कल कल नाद नहीं था उसमें मन की बात न कहता था।
इसे जान्हवी-सा आदर दे किसने भेंट चढ़ाया है,
अञ्चल से सस्नेह बचाकर छोटा दीप जलाया है।
जला करेगा वक्षस्थल पर बहा करेगी लहरी में,
नाचेंगी अनुरक्त वीचियाँ रंजित प्रभा सुनहरी में,
तट तरु की छाया फिर उसका पैर चूमने जावेगी,
सुप्त खगों का नीरव स्मृति क्या उसको गान सुनावेगी।
देख नग्न सौन्दर्य प्रकृति का निर्जन में अनुरागी हो,
निज प्रकाश डालेगा जिसमें अखिल विश्व सम भागी हो।
किसी माधुरी स्मित सा होकर यह संकेत बताने को,
जला करेगा दीप, चलेगा यह सोता बह जाने को।

अर्चना

वीणे ! पंचम स्वर में बज कर मधुर मधु
बरसा दे स्वयं विश्व में आज तो।
उस वर्षा में भींगे जाने से भला
लौट चला आवे प्रियतम, इस भवन में।
आश्रय ले ; मेरे वक्षस्थल में तनिक।
लज्जे ! जा, बस अब न सुनूँगी एक भी—
तेरी बातों में से ; तूने दुःख दिया,
रुष्ट हो गये प्रियतम, और चले गये
यह कैसा संकोच मन ! तुझे क्या हुआ !
बड़ी बड़ी अभिलाषायें इस हृदय ने
संचित की थीं इस छोटे भाण्डार में ;
लज्जावती लता-सा होकर संकुचित—

जो अपने ही में छिप जाना चाहता।
यदि साहस हो, उसे खोलकर देख लो,
मन मन्दिर में नाथ हमारी 'अर्चना'
हुई उपेक्षित तुमसे, हँसती है हमें।
स्निग्ध कामना कुसुम रचित यह मालिका—
लज्जित है; प्रियतम के गले लगी नहीं।
प्रियतम! ऐसा ही क्या तुमको उचित था।
प्राण प्रदीप न करता है आलोक वह—
जिसमें वाञ्छित रूप तुम्हारा देख लूँ।
जीवनधन! क्या अश्रु सलिल अभिषेक भी।
तृप्त नहीं कर सका तुम्हें! सब व्यर्थ है!
बनो न इतने निर्दय सखे! प्रसन्न हो।
हो जावेगा जब निराश मन फिर कभी
ध्यान हमारा आवेगा, होगी दया।
तो क्या क्षुब्ध न हो तुम—यह सोच लो,
फिर, जैसा मन में आवे वैसा करो।



बिखरा हुआ प्रेम

अरुणोदय में चंचल होकर, व्याकुल होकर विकल प्रेम से,
मायामयी सुप्ति में सोकर, अति अधीर हो अर्धक्षेम से,
टुकड़े-टुकड़े कर फेंका था जीवन का निगूढ़ आनन्द,
नील-निशा के शून्य गगन में लो फैलाकर फिर छल छन्द,
बनकर तारा निकर मनोहर, उदय हुआ वह उसी नियम से।
रिक्त हुए हम व्यर्थ फेंककर, विकल हुए तम अतुल विषम से॥

प्रणयी प्रणत बनूँ मैं क्योंकर, दुर्बलता निज समझ, क्षोभ से,
जीवन मदिरा कैसे रोकर, भरूँ पात्र में तुच्छ लोभ से,
हाय! मुझे निष्किञ्चन क्यों कर डाला रे! मेरे अभिमान,
वही रहा पाथेय तुम्हारे, इस अनन्त पथ का अनजान,
बूँद-बूँद से सींचो, पर ये, भीगेंगे न सकल अणु तुम से।
खोजो अपना प्रेम सुधाकर, प्लावित हो भव शीतल हिम से॥

शून्य हृदय में प्रेम-जलद-माला कब फिर घिर आवेगी ?
वर्षा इन आँखों से होगी, कब हरियाली छावेगी ?
रिक्त हो रही मधु से, सौरभ सूख रहा है आतप से ;
सुमन कली खिलकर कब अपनी पखड़ियाँ बिखरावेगी ?
लम्बी विश्व कथा में सुख निद्रा समान इन आँखों में—
सरस मधुर छवि शान्त तुम्हारी कब आकर बस जावेगी ?
मन-मयूर कब नाच उठेगा कादंबिनी छटा लखकर ;
शीतल आलिंगन करने को सुरभि लहरियाँ आवेंगी ?
बढ़ उमंग सरिता आवेगी आर्द्र किये रूखी सिकता ;
सकल कामना स्रोत लीन हो पूर्ण विरति कब पावेगी ?

स्वभाव

दूर हटे रहते थे हम तो आप ही।
क्यों परिचित हो गये ?—न थे जब चाहते—
हम मिलना तुमसे। न हृदय में वेग था।
स्वयं दिखाकर सुन्दर हृदय मिला लिया
दूध और पानी-सा ; अब फिर क्या हुआ ?—
देकर जो कि खटाई फाड़ा चाहते।
भरा हुआ था नवल मेघ जल-बिन्दु से,
ऐसा पवन चलाया, क्यों बरसा दिया ?
शून्य हृदय को गया जलद, सब प्रेम-जल—
देकर तुम्हें। न तुम कुछ भी पुलकित हुए।
मरु-धरणी-सम तुमने सब शोषित-किया।
क्या आशा थी ?—आशा-कानन को यही ?
चञ्चल हृदय तुम्हारा केवल खेल था,
मेरी जीवन-मरण-समस्या हो गई।
डरते थे इसको, होते थे संकुचित—
'कभी न प्रकटित तुम स्वभाव कर दो कभी।'

असन्तोष

हरित वन कुसुमित हैं द्रुम-वृन्द ;
बरसता है मलयज मकरन्द।
स्नेह मय सुधा दीप है चन्द ;
खेलता शिशु होकर आनन्द।
क्षुद्र गृह किन्तु हुआ सुख मूल ; उसी में मानव जाता भूल।

नील नभ में शोभन विस्तार ;
प्रकृति है सुन्दर, परम उदार।
नर हृदय, परिमित, पूरित स्वार्थ ;
बात जँचती कुछ नहीं यथार्थ।
जहाँ सुख मिला न उससे तृप्ति ; स्वप्न सी आशा मिली सुषुप्ति।
प्रणय की महिमा का मधु मोद,
नवल सुखमा का सरल विनोद,
विश्व गरिमा का जो था सार,
हुआ वह लघिमा का व्यापार।
तुम्हारा मुक्तामय उपहार, हो रहा अश्रुकणों का हार।
भरा जी तुमको पाकर भी न ;
हो गया छिछले जल का मीन।
विश्व भर का विश्वास अपार,
सिन्धु-सा तैर गया उस पार।
न हो जब मुझ को ही संतोष, तुम्हारा इसमें क्या है दोष ?

अनुनय

उसी स्मृति-सौरभ में मृग-मन मस्त रहे
यही है हमारी अभिलाषा सुन लीजिये।
शीतल हृदय सदा होता रहे आँसुओं से
छिपिये उसी में मत बाहर हो भीजिये।
हो जो अवकाश तुम्हें ध्यान कभी आवे मेरा
अहो प्राणप्यारे, तो कठोरता न कीजिये।
क्रोध से, विषाद से, दया या पूर्व प्रीति ही से,
किसी भी बहाने से तो याद किया कीजिये॥

प्रियतम !

क्यों-जीवन-धन ! ऐसा ही है न्याय तुम्हारा क्या सर्वत्र ?
लिखते हुए लेखनी हिलती, कँपता जाता है यह पत्र।
औरों के प्रति प्रेम तुम्हारा, इसका मुझको दुःख नहीं।
जिसके तुम हो एक सहारा, वही न भूला जाय कहीं॥
निर्दय होकर अपने प्रति, अपने को तुमको सौंप दिया॥
प्रेम नहीं, करुणा करने को, क्षण-भर तुमने समय दिया!
अबसे भी तो अच्छा है, अब और न मुझे करो बदनाम।
क्रीड़ा तो हो चुकी तुम्हारी, मेरा क्या होता है काम ?
स्मृति को लिये हुए अन्तर में, जीवन कर देंगे निःशेष।
छोड़ो, अब दिखलाओ मत, मिल जाने का यह लोभ विशेष॥
कुछ भी मत दो, अपना ही जो मुझे बना लो, यही करो।
रक्खा जब तक आँखों में, फिर और द्वार पर नहीं ढरो॥
कोर बरौनी का न लगे हाँ, इस कोमल मन को मेरे।
पुतली बन कर रहें चमकते, प्रियतम! हम दृग में तेरे॥

———

कहो ?

शिथिल शयन सम्भोग दलित कवरी के कुसुम सदृश कैसे,
प्रतिपद व्याकुल आज छन्द क्यों होते हैं प्रियतम ! ऐसे ?
वाणी मस्त हुई अपने में, उससे कुछ न कहा जाता,
गद्‌गद् कण्ठ स्वयं सुनता है जो कुछ है वह कह जाता ॥
ऊँचे चढ़े हुए वीणा के तार मधुप-से गूँज रहे,
पर्दा रखते हैं सुर पर वे मनमाने-से बोल रहे ।
जीवन-धन ! यह आज हुआ क्या बतलाओ, मत मौन रहो,
वाह्य वियोग; मिलन या मन का, इसका कारण कौन कहो ?

निवेदन

तेरा प्रेम हलाहल प्यारे, अब तो सुख से पीते हैं।
विरह-सुधा से बचे हुए हैं, मरने को हम जीते हैं॥
दौड़-दौड़ कर थका हुआ है, पड़ कर प्रेम-पिपासा में।
हृदय खूब ही भटक चुका है, मृग-मरीचिका-आशा में॥
मेरे मरुमय जीवन के हे सुधा-स्रोत! दिखला जाओ।
अपनी आँखों के आँसू से इसको भी नहला जाओ॥
डरो नहीं, जो, तुमको मेरा उपालम्भ सुनना होगा।
केवल एक तुम्हारा चुम्बन इस मुख को चुप कर देगा॥

प्यास

हृदय की दारुण ज्वाला से,
हुए व्याकुल हम उस दिन पूर्ण।
देखतीं प्यासी आँखें थीं,
रस भरी आँखों को मदघूर्ण॥

प्यास बढ़ती ही जाती थी,
बुझाने की इच्छा थी बड़ी।
दिया उन हाथों ने प्याला,
अचञ्चल चित्त हुआ उस घड़ी।

राग रञ्जित थी वह पेया,
उसे पीते पीते रुक गये।
प्रश्न मेरा यह उनसे था,
पूछने से वे प्रमुदित हुए॥

नशीली आँखों सदृश कहो,
तुम्हारी ही, इसमें है नशा?
"गुलाबी हल्का-सा" बोले, —
स्तब्ध हो रही मोह की निशा॥

मौन थे सुन कर मेरा प्रश्न,
"सदा यह बनी रहेगी भली।"
कंटीला था गुलाब चैती,
उठी चटचटा उसी की काली॥
उषा आभास चन्द्रिका में,
पवन-परिमल-परिपूरित सङ्ग॥
चढ़ रही थी प्राची में वह,
बदलता था नभ का कुछ ढङ्ग॥
कहा व्याकुल हो मैंने भी,
तुम्हारे कोमल कर से वही—
चाहता पीना मैं प्रियतम,
नशा जिसका उतरे ही नहीं॥
हृदय की बात नवीन कली—
सहसा हम खोल कह चुके हाय!
फूल-मालिका सदृश वह भी,
चुप रहे जीवनधन मुसक्याय॥

———

पी ! कहाँ ?

डाल पर बोलता है पपीहा—
"हो भला प्राणधन, तुम कहाँ ?–हा !

आ मिलो हो जहाँ।
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?

प्यास से मर रहे दीन चातक
क्यों बना चाहते प्राण-घातक ?

श्याम-घन ! हो कहाँ ?
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?

नभ-हृदय में घिरी मेघमाला ।
चंचला कर रही है उजाला ॥

देख लूँ, हो कहाँ ?
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?

जलमयी हो रही यह धरा है ।
कण्ठ फिर भी न होता हरा है ॥

प्यास में जल रहा ।
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?

प्यास कैसी तुम्हारी ? पपीहा !
मग्न न होकर बही जा रही हो ?

लो, वही कह रहा—
पी ! कहां ? पी ! कहां ?

———

पाईंबाग

सरसों के पीले-कागज पर वसन्त की आज्ञा पाकर।
गिरा दिये वृक्षों ने सारे पत्ते अपने सुखला कर॥
खड़े देखते राह नये कोमल किसलय की आशा में।
परिमलपूरित पवन-कण्ठ से, लगने की अभिलाषा में॥
अतल सिन्धु में लगा-लगा कर, जीवन की वेड़ी वाजी।
व्यर्थ लगाने को डुब्बी हाँ, होगा कौन भला राजी॥
मिले नहीं जो वाञ्छित मुक्ता अपना कंठ सजाने को।
अपना गला कौन देगा यों, बस केवल मर जाने को!
मलयानिल की तरह कभी आ, गले लगोगे तुम मेरे।
फिर विकसेगी उजड़ी क्यारी, क्या गुलाब की यह मेरे॥
कभी चहलकदमी करने को, काँटों का कुछ ध्यान न कर।
अपना पाईंबाग बना लोगे प्रिय! इस मन को आकर॥

प्रत्याशा

मन्द पवन बह रहा अँधेरी रात है।
आज अकेले निर्जन गृह में क्लान्त हो—
स्थित हूँ, प्रत्याशा में मैं तो प्राणधन!
शिथिल विपंची मिली विरह-संगीत से
बजने लगी उदास पहाड़ी-रागिनी।
कहते हो—"उत्कण्ठा तेरी कपट है।"
नहीं नहीं इस धुँधले तारे को अभी,—
ताकी खुली हुई खिड़की की राह से
जीवन-धन मैं! देख रहा हूँ सत्य ही।

दिखलाई पड़ता है जो तम-व्योम में,
हिचको मत निस्सङ्ग न देख मुझे अभी।
तुमको आते देख, स्वय हट जायँगे—
वे सब; आओ, मत संकोच करो यहाँ।
सुलभ हमारा मिलना है—कारण यही—
ध्यान हमारा नहीं तुम्हें जो हो रहा।
क्योंकि तुम्हारे हम तो करतलगत रहे
हाँ, हाँ, औरों की भी हो सम्वर्धना।
किन्तु न मेरी करो परीक्षा, प्राणधन!
होड़ लगाओ नहीं, न दो उत्तेजना।
चलने दो मलयानिल की शुचि चाल से।
हृदय हमारा नहीं हिलाने योग्य है।
चन्द्र-किरण हिम-विन्दु मधुर मकरन्द से—
बनी सुधा, रख दी है हीरक-पात्र में।
मत छलकाओ इसे, प्रेम-परिपूर्ण है।

———

स्वप्नलोक

स्वप्न लोक में आज जागरण के समय
प्रत्याशा की उत्कण्ठा में पूर्ण था
हृदय हमारा, फूल रहा था कुसुम सा।
देर तुम्हारे आने में थी, इसलिये
कलियों की माला विरचित की थी कि, हाँ
जब तक तुम आओगे ये खिल जाँयगी।
ये सब खिलने लगीं, न हमको ज्ञात था।
आँख खोल देखा तो चन्द्रालोक से
रञ्जित कोमल बादल नभ में छा गये,
जिस पर पवन सहारे तुम हो आरहे।
हाय कली थी एक हृदय के पास ही
माला में, वह गड़ने लगी, न खिल सकी।
मैं व्याकुल हो उठा कि तुमको अङ्क में
लेलूँ, तुमने झोरी फेंकी सुमन की।
मस्त हुई आँखें, सोने को जग पड़े
सुप्त सकल उद्वेग मधुरतम मोह में॥

दर्शन

जीवन-नाव अँधेरे अन्धड़ में चली।
अद्भुत परिवर्त्तन यह कैसा हो गया।
निर्मल जल पर सुधा भरी है चन्द्रिका,
बिछल पड़ी मेरी छोटी सी नाव भी।
वंशी की स्वर लहरी नीरव व्योम में—
गूँज रही है परिमल पूरित पवन भी—
खेल रहा है, जल लहरी के सङ्ग में।
प्रकृति भरा प्याला दिखलाकर व्योम में—
बहकाती है, और नदी उस ओर ही—
बहती है। खिड़की उस ऊँचे महल की—
दूर दिखाई देती है, अब क्यों रुके—
नौका मेरी, द्विगुणित गति से चल पड़ी।
किन्तु किसी के मुख की छवि-किरणें घनी,
रजत रज्जु सी लिपटी नौका से वहाँ,
बीच नदी में नाव किनारे लग गई।
उस मोहन मुख का दर्शन होने लगा॥

मिलन

इस हमारे और प्रिय के मिलन से
स्वर्ग आकर मेदिनी से मिल रहा ;
कोकिलों का स्वर विपञ्ची नाद भी
चन्द्रिका, मलयजपवन, मकरन्द औ

मधुप माधविकाकुसुम से कुञ्ज में
मिल रहे, सब साज मिलकर बज रहे
आज इस हृदयाब्धि में, बस क्या कहूँ।
तुङ्ग तरल तरङ्ग ऐसी उठ रही—

शीतकर शतशत उदय होने लगे।
तारिकायें नील नभ में आज ये,
फूल की झालर बनी हैं शोभती।
गन्ध सौरभ वायुमण्डल की तहें,

अन्तरिक्ष विशाल में है मिल रही।
चन्द्र-कर पीयूष वर्षा कर रहा।
दृष्टि पथ में सृष्टि है आलोकमय,
विश्व वैभव से भरा यह धन्य है।

हृदय-वीणा कर रही प्रस्तार अब,
तीव्र पञ्चम तान की उल्लास से।
बेसुरा पिक पा नहीं सकता कभी,
इस रसीली मूर्च्छना की मत्तता।

आशालता

१

तुम्हारी करुणा ने प्राणेश ?
बनाकर नव मनमोहन वेश ।।
दीनता को अपनाया,
उसी से स्नेह बढ़ाया;
लता अज्ञात बढ़ चली साथ ।
मिला था करुणा का शुभ हाथ ।।

२

नित्य की सन्ध्या और प्रभात।
स्वर्ण मय जब होता रवि गात॥
व्योम ने रङ्ग खिलाया,
विश्व ने व्यर्थ नहाया;
स्वर्णघट में जल भर कर कान्त।
दीनता लाती थी अश्रान्त॥

३

दया का स्पर्श मात्र अभिराम।
बनाता उसे सुरभि का धाम॥
उसी जल से नहलाया,
मधुप गण को बुलवाया;
निछावर करते थे जो प्राण।
बिना फूलों को पाये त्राण॥

४

बहुत दिन तक सिञ्चन का कार्य्य।
हुआ करता अविरल अनिवार्य्य॥

बुद्धि के, विवेक के, या ज्ञान, अनुमान के भी
आये जो पतङ्ग तुम्हें देखने, जले, गये ;
बलिहारी माधुरी अनन्त कमनीयता की,
रूपवाले लोटने को पैरों के तले गये।
शङ्का लगी होने किसी को, तो कोई सपने सा
जपने लगा है आप भूल में चले गये ;
छलने के लिये तो स्वाँग बहुरूपिए के
तुमने लिए अनेक तुमही छले गये।
सुमन समूहों में सुहास करता है कौन,
मुकुलों में कौन मकरन्द सा अनूप है ;
मृदु मलयानिल-सा माधुरी उषा में कौन,
स्पर्श करता है, हिमकाल में ज्यों धूप है।
मान है तुम्हारा, अभिमान है हमारा; यह
"नहीं नहीं" करना भी 'हाँ' का प्रतिरूप है ;
घूँघट की ओट में छिपा है भला कैसे कभी,
फूटकर निखर बिखरता जो रूप है।
होकर अतृप्त तुम्हें देखने को नित्य नया
रूप दिये देता हूँ पुराना छोड़ने के लिये ;
तुम्हें भी न होता परितोष कभी मेरे जान,

कंज कामना की आँखें आलस से बंद सोई
चंद उपहारों से भी मुँह मोड़ने के लिये;
बंधन में बँधता प्रतिज्ञा की प्रतीति किए,
तुम हँस देते, बस, उसे तोड़ने के लिये।

दीन दुखियों को देख आतुर अधीर अति
करुणा के साथ उनके भी कभी रोते चलो;
थके श्रमी जीवों के पसीने भरे सीने लग
जीने को सफल करने के लिये सोते चलो।

भूले, भोले बालकों के इस विश्व खेल में भी
लीला ही से हार और श्रम सब खोते चलो;
सुखी कर विश्व, भरे स्मित सुखमा से सुख
सेवा सबकी हो, तो प्रसन्न तुम होते चलो।

हृदय का सौंदर्य

नदी की विस्तृत वेला शान्त,
अरुण मंडल का स्वर्ण विलास;
निशा का नीरव चन्द्र-विनोद,
कुसुम का हँसते विकास।
एक से एक मनोहर दृश्य,
प्रकृति की क्रीड़ा के सब छंद;
सृष्टि में सब कुछ है अभिराम,
सभी में हैं उन्नति या ह्रास।
बना लो अपना हृदय प्रशान्त,
तनिक तब देखो वह सौंदर्य;
चन्द्रिका से उज्वल आलोक,
मल्लिका सा मोहन मृदुहास।
अरुण हो सकल विश्व अनुराग,
करुण हो निर्दय मानव चित्त;
उठे मधुलहरी मानस में,
कूल पर मलयज का हो वास।

———

प्रार्थना

देख लो अपनी आँखों से,
दृश्य रमणीय रूप का आज।
प्राणधन ! सच तुमको है शपथ,
तुम्हारा यह अभिनव है साज ॥

उषा सौंदर्यमयी मधु-कान्ति,
अरुण-यौवन का उदय विशेष।
सहज-सुषमा मदिरा से मत्त,
अहा ! कैसा नैसर्गिक वेश !

देखकर जिसे एक ही बार,
हो गए हम भी हैं अनुरक्त
देख लो तुम भी यदि निज रूप,
तुम्हीं हो जाओगे आसक्त !

दृष्टि फिर गई तुम्हारी, किया—
सृष्टि ने मधु-धारा में स्नान।
बह चली मंदाकिनी मरन्द—
भरी, करती कोमल कल गान ॥

प्रार्थना अन्तर की मेरी—
यही जन्मान्तर की हो उक्ति।
"जन्म हो, निरखूँ तव सौंदर्य
मिले इंगित से जीवनमुक्ति"

—

होली की रात

बरसते हो तारों के फूल
छिपे तुम नील पटों में कौन ?
उड़ रही है सौरभ की धूल
कोकिला कैसे रहती मौन ।

चाँदनी धुली हुई है आज
बिछलते हैं तितली के पंख ।
सम्हलकर, मिलकर बजते साज
मधुर उठती हैं तान असंख ।

तरल हीरक लहराता शान्त
सरल आशा सा पूरित ताल।
सिताबी छिड़क रहा विधु कान्त
बिछा है सेज कमलिनी जाल।
पिये, गाते मनमाने गीत
टोलियाँ मधुपों की अविराम।
चली आतीं, कर रहीं अभीत
कुमुद पर बरजोरी विश्राम।

× × ×

उड़ा दो मत गुलाल सी हाय
अरे अभिलाषाओं की धूल।
और ही रंग नहीं लग जाय
मधुर मंजरियाँ जावें भूल।
विश्व में ऐसा शीतल खेल
हृदय में जलन रहे, क्या बात!
स्नेह से जलती ज्वाला झेल
बनाली हाँ, होली की रात।

झील में

झील में झाड़ पड़ती थी,
श्याम-वनशाली तट की कान्त
चन्द्रमा नभ में हँसता था,
बज रही थी वीणा अश्रान्त ॥

तृप्ति में आशा बढ़ती थी,
चन्द्रिका में मिलता था ध्वान्त ।
गगन में सुमन खिल रहे थे,
मुग्ध हो प्रकृति स्तब्ध थी शान्त ॥

निभृत था—पर हम दोनों थे
वृत्तियाँ रह न सकीं फिर दान्त ।
कहा जब व्याकुल हो उनसे—
"मिलेगा कब ऐसा एकान्त ?"

हाथ में हाथ लिया मैंने
हुए वे सहसा शिथिल नितान्त ।
मलय ताड़ित किसलय कोमल
हिल उठी उँगली, देखा; भ्रान्त ।।

झील, झाईं, नभ, शशि, तारा,
विटप इंगित करते अश्रान्त ।
तारका तरल झलकते थे,
अष्टमी के शारदशशि प्रान्त ।।

रत्न

मिल गया था पथ में वह रत्न।
किन्तु मैंने फिर किया न यत्न॥

पहल न उसमें था बना,
चढ़ा न रहा खराद।
स्वाभाविकता में छिपा,
न था कलंक विषाद॥

चमक थी, न थी तड़प की झोंक।
रहा केवल मधु स्निग्धालोक॥
मूल्य था मुझे नहीं मालूम।
किन्तु मन लेता उसको चूम॥

उसे दिखाने के लिये,
उठता हृदय कचोट।
और रुके रहते सभय,
करे न कोई खोंट॥

बिना समझे ही रख दे मूल्य।
न था जिस मणि के कोई तुल्य॥
जान कर के भी उसे अमोल।
बढ़ा कौतूहल का फिर तोल॥

मन आग्रह करने लगा,
लगा पूछने दाम।
चला आँकाने के लिए,
वह लोभी बे काम॥

पहन कर किया नहीं व्यवहार।
बनाया नहीं गले का हार॥

कुछ नहीं

हँसी आती है मुझको तभी,
जब कि यह कहता कोई कहीं—
अरे सच, वह तो है कंगाल,
अमुक धन उसके पास नहीं।

सकल निधियों का वह आधार,
प्रमाता अखिल विश्व का सत्य,
लिये सब उसके बैठा पास
उसे आवश्यकता ही नहीं।

और तुम लेकर फेंकी वस्तु,
गर्व करते हो मन में तुच्छ,
कभी जब ले लेगा वह उसे
तुम्हारा तब सब होगा नहीं।

तुम्हीं तब हो जाओगे दीन,
और जिसका सब संचित किए;
साथ बैठा है सब का नाथ,
उसे फिर कमी कहाँ की रही ?

शान्त रत्नाकर का नाविक,
गुप्त निधियों का रक्षक यक्ष,
कर रहा वह देखो मृदु हास,
और तुम कहते हो कुछ नहीं।

आदेश

कौन कहता है कानों में
किसी का कहना तू मत मान।
अन्ध विश्वास दिलाते वे,
इसी में बनते हैं विद्वान॥

शुद्ध मानस की लहरी लोल,
पंक्तियाँ पावन लिखीं विचित्र।
छोड़ ममता पढ़ ले इसको,
यही है शुभ आदेश महान॥

तोड़ कर बाधा बन्धन भेद,
भूल जा अहमिति का यह स्वार्थ।
सुधा भर ले जीवन घट में,
द्वन्द्व का विष मत कर तू पान॥

प्रार्थना और तपस्या क्यों ?
पुजारी किसकी है यह भक्ति।
डरा है तू निज पापों से,
इसी से करता निज अपमान॥

दुखी पर करुणा क्षण भर हो,
प्रार्थना पहरों के बदले।
मुझे विश्वास है कि वह सत्य,
करेगा आकर तब सम्मान॥

—

देवबाला

दूर कृत्रिमते ! यहाँ मत आ री,
यहाँ एकत्रित सरलता सारी।
न छूना इसको नव कुहक शीला,
चंचले ! यह तो विमल विधु लीला ॥

सात रंगों का इन्द्रधनु क्या है,
छिपेगा क्षण में कभी ठहरा है।
नई कोंपल पर किरण माला सी,
खेलती है यह देव-बाला-सी ॥

सुवासित जल भी बिगड़ जाता है,
सुमन सौरभ क्या न उड़ जाता है।
शिशिर बूँदों में चमक रहती है,
ताप रविकर का न सह सकती है।

सुरसरी की यह विमल धारा है,
स्नेह नभ की यह नवल तारा है।
शील निधि का यह सुघर मोती है,
मधुरिमा इतनी कहाँ होती है ?

——

कसौटी

तिरस्कार कालिमा कलित है,
　　　　अविश्वास-सी पिच्छल है।
कौन कसौटी पर ठहरेगा ?
　　　　किसमें प्रचुर मनोबल है ?

तपा चुके हो विरह-वह्नि में,
　　　　काम जँचाने का न इसे।
शुद्ध सुवर्ण हृदय है प्रियतम !
　　　　तुमको शंका केवल है॥

विका हुआ है जीवन-धन यह
कब का तेरे हाथों में।
विना मूल्य का, है अमूल्य यह
ले लो इसे, नहीं छल है॥

कृपा कटाक्ष अलम् है केवल
कोरदार या कोमल हो।
कट जावे तो सुख पावेगा,
वार-वार यह विह्वल है॥

सौदा कर लो वात मान लो,
फिर पीछे पछता लेना।
खरी वस्तु है, कहीं न इसमें,
वाल वरावर भी वल है॥

अतिथि

हृदय-गुफा थी शून्य,
रहा घर सूना।
इसे बसाऊँ शीघ्र,
बढ़ा मन दूना॥

अतिथि आ गया एक,
नहीं पहचाना।
हुए नहीं पद-शब्द,
न मैंने जाना॥

हुआ बड़ा आनन्द,
बसा घर मेरा।
मन को मिला विनोद,
कर लिया घेरा॥

उसको कहते "प्रेम"
अरे अब जाना।
लगे कठिन नख-रेख,
तभी पहचाना॥

अतिथि रहा वह किन्तु,
न घर बाहर था।
लगा खेलने खेल,
अरे, नाहर था॥

सुधा में गरल

१

सुधा में मिला दिया क्यों गरल ।
पिलाया तुमने कैसा तरल ॥
मांगा होकर दीन,
कंठ सींचने के लिये ;
गर्म झील का मीन,
निर्दय, तुमने कर दिया ॥
सुना था तुम हो सुन्दर ! सरल ।
सुधा में मिला दिया क्यों गरल ॥

२

राग रञ्जित सन्ध्या हो चली।
कुमुदिनी मुकुलित हो कुछ खिली॥
तारागण नभ प्रान्त,
क्षितिज छोर में चन्द्र था।
फैला कोमल ध्वान्त,
दीपक जल कर बुझ गये।
हमें जाने को आज्ञा मिली।
राग रञ्जित सन्ध्या हो चली॥

३

विजन वन, आधी रजनी गई।
मधुर मुरली ध्वनि चुप हो गई॥
थी मुझको अज्ञात,
शुक्ल पक्ष की अष्टमी,
बीते कैसे रात,
अस्त हो गई कौमुदी—
राह में ही; वह भी है नई।
विजन वन आधी रजनी गई॥

उपेक्षा करना

किसी पर मरना यही तो दुःख है !
'उपेक्षा करना' मुझे भी सुख है :
यही प्रार्थना हमारी ।
हमारे उर में न सुख पाओगे ;
मिला है किसको कहाँ जाओगे ?
सरल यह चाल तुम्हारी ॥

स्वच्छ आलोकित दीप बलता है,
पंखयुत कीड़ा सतत जलता है;
वही है दशा हमारी।

मोह या बदला ! कौन कह सकता,
प्रेम या पीड़ा ! कौन सह सकता;
न हो वह दशा तुम्हारी॥

जलन छाती की बड़ी सहता हूँ,
मिलो मत मुझसे यही कहता हूँ;
बड़ी हो दया तुम्हारी।

तुम रहो शीतल हमें जलने दो,
तमाशा देखो हाथ मलने दो;
तुम्हें है शपथ हमारी॥

वेदने, ठहरो !

सुखद थी पीड़ा, हृदय की क्रीड़ा
प्राण में भरी भयानक भक्ति।
मनोहर सुख था, न मुझको दुःख था;
रही विश्वयोग में न विरक्ति॥

वेदना मिलती, औषधी घुलती।
मिलन का स्वप्न कराता भान।
नवल निद्रा का, मधुर तन्द्रा का
व्यथा आरम्भ; वही अवसान॥

न मुझसे अड़ना, कहाँ का लड़ना;
प्राण है केवल मेरा अन्न।
वेदने ठहरो! कलह तुम न करो;
नहीं तो कर दूँगा निःशस्त्र॥

—

भूल का खेल

१

धूप थी कड़ी पवन था उष्ण ;
धूलि की भी थी कमी नहीं ।
भूल कर विश्व, खेल में व्यस्त ;
रहे हम उस दिन कभी कहीं ॥

२

विमल उल्लास, न वह कथनीय ;
न बाधा उसमें कहीं रही ।
न था उद्देश्य, न था परिणाम ;
मिलेगा वह आनन्द कहीं ॥

३

शरद की शान्त नदी का खेल ;
सदृश होता अनुभूत वही ।
खेल की नाव, जहाँ ले जाव ;
रुकावट तो थी कहीं नहीं ॥

४

प्रलोभन पुञ्ज, समादर सहित ;
दिये थे तुमने कौन नहीं।
अङ्क में लिया, वक्ष था शीत ;
तुम्हारा हिम से बढ़ा कहीं ॥

५

उष्ण निश्वास, हुआ सहसा,
तुम्हारा, पहले रहा नहीं॥
तुम्हारी गोद, न अच्छी लगी ;
उतरने को मचला तबही ॥

६

धूल का खेल, लगे खेलने ;
किन्तु वह क्रीड़ा हो न रही।
बोझ हो गया, सरल आनन्द ;
मिलेगा फिर अब हमें कहीं ?

विन्दु !

रे मन !

न कर तू कभी दूर का प्रेम।
निष्ठुर ही रहना, अच्छा है, यही करेगा क्षेम ॥

देख न,

यह पतझड़ बसन्त एकत्रित मिला हुआ संसार।
किसी तरह से उदासीन ही कट जाना उपकार ॥

या फिर,

जिसे चाह तू, उसे न कर आँखों से कुछ भी दूर।
मिला रहे मन मन से, छाती छाती से भरपूर ॥

लेकिन,

परदेसी की प्रीति उपजती अनायास ही आय।
नाहर नख से हृदय लड़ाना, और कहूँ क्या हाय ?

विन्दु !

सुमन, तुम कली बने रह जाओ,
ये भौंरे केवल रस-लोभी इन्हें न पास बुलाओ।
हवा लगी बस, झटपट अपना हृदय खोल दिखलाते ।।
फूले जाते किस आशा पर कहो न क्या फल पाते।
मधुर गन्धमय स्वच्छ कुसुम-रस क्यों बरबस हो खोते।
कितनों ही को देखो तुम-सा, हँसते हैं फिर रोते ।।
सूखी पंखड़ियों को देखो, इन्हें भूल मत जाओ।
मिला विकसने का प्रसाद यह, सोचो मन में लाओ ।।